(३८१)

संत संत सब कोई कहे, संत समूदर पार;
अनल पंखका को एक हय, पंखका कोट हजार।

(३८२)

सुराका तो दल नहि, चंदनका बन नांहि;
सब समुद्र मोति नहि, युं हरिजन जग मांहि।

(३८३)

एक धडी आधी घडी, भाव भजनमें जाय;
सत संगम पलहि भली, जमका धका न खाय।

(३८४)

कबीर, सेवा दो भली, एक संत एक राम,
राम हय दाता मुक्तिका, संत जपावे नाम।

(३८५)

निराकार हरि रुप हय, प्रेम प्रीत सों सेव;
जो मांगे आकारको, तो संतो प्रत्यक्ष देव।

(३८६)

संत वृक्ष हरिनाम फळ, सतगुरु शब्द बिचार;
ऐसे हरिजन ना हते, तो जळ मरते संसार।

सन्यासी विशे

(३८७)

केशो कहां बिगाडयो, जो मुंडे सो बार ?
मनको काहे न मुंडियो, जामे बिषयहि बिकार।

(३८८)

मन मयाशी मुंडिये, केशहि मुंडे काहे ?
जो किया सो मनहि किया, केश किया कछु नाहे।

(३८९)

स्वांग पेहंर शुरा भया, दुनिया खाइ खुंद;
जो सेरी सत् निकसें, सो तो राखे मुंढ।

(३९०)

हाथसें माळा फिरे, पर हिरदा डामाडुल;
पग तो पालामे गला, मांन न लागे शुल।

(३९१)

माला पेहरे मन सुखी, तांसे कछु न होय;
मन मालाकु फेरते, जुग उज्याला होय।

(३९२)

माला पेहरे कोन गून, मनकी दुबधा न जाय;
मन माला कर राखीये, हरि चरन चित लाय।

(३९३)

मनका मस्तक मुंड ले, काम क्रोधका केश;
जो ये पांचो परमोघ ले, तो चेला सबहि देश।

(३९४)

माला तिलक बनायके, धरम बिचारा नाहि;
माला बिचारी क्या करे, मेल रहा मन मांहि।

(३९५)

मुंड मुडावत दिन हि गया, अजहु न मिल्या राम;
राम बिचारा क्या करे, मनके और हि काम ?

(३९६)

काष्ट काटके माला किनी, मांहे परोया सूत;
माला बिचारी क्या करे, जो फेरनहार कपुत ?

(३९७)

माला तिलक तो भेख हय, राम भक्ति कछु ओर;
कहे कबीर जीने पेहेरया, पांचो राखो ठोर।

(३९८)

माला तो मनकी भली, ओर संसारी भेख;
माला पहेरे मन सुखी, तो बोहरा के घर देख।

(३९९)

माला मुजसे लर पडी, काहे फिरावे मोहे;
जो दिल फेरें आपनां, तो राम मिलावुं तोहे।

(४००)

भरम न भागा जीवका, अनन्त धराये भेख;
सत् गुरु समजा बाहेरा, अंतर रहा अलेख।

(४०१)

तनको जोगी सब करे, मनको करे न कोय;
मनको जोगी जो करे, सो गुरु बाळक होय ।

(४०२)

मन मेला तन उजळा, बगला कपटी अंग;
ताते तो कउवा भला, तन मन एकही रंग ।

(४०३)

कविता कोटी कोट हय, सिरके मुंडे कोट;
मनके मुंडे देख कर, ता संग लिजे ओट ।

(४०४)

माथां मूंछ मुंडाय के, काया घाटम घोट;
मनको काहे न मुंडिये, जामे सबहि खोट ?

मन के बारेमें (४०५)

मन मेरा पंखी भया, जहां तहां उड जाय;
जहां जैसी संगत करे, तहां तैसा फळ खाय ।

(४०६)

मन माता मन दुबला, मन पानी मन लाय;
मनको जैसी उपजे, मन तैसा हो जाय ।

(४०७)

मन मरकट बन बन फिरे, नेक न कहेरावे;
राम नाम बांघा बिना, जीत भावे तित जाय ।

(४०८)

मन मरकट मन चातुरी, मन राजा मन रंक;
जो मन हरजीकों मिले, तो हरजी मिले निःशंक ।

(४०९)

मन पंखी बिन पंखका, लख जोजन ऊड लाय;
मन भावे ताको मिले, घटमें आंन समाय ।

(४१०)

सात समुद्रकी एक लहेर, ओर मनकी लहेर अनेक;
कोई एक हरिजन उबरा, डुबी नाव अनेक ।

(४११)

मनका बहोत रंग हय, तल तल जैसा होय;
एका रंग जो रहे, तो कोटी मधे कोय ।

(४१२)

कबू मन गगन चढे, कबू जाय पाताळ;
कबू मन वरकता दिसे, कबू पाडे जंजाळ ।

(४१३)

मनकी हारे हार हय, और मनकी जीते जीत;
परब्रह्म जो पाइए, तो मनहि होय प्रतित ।

(४१४)

कबीर ! मन तो एक हय, भावे तहां बिलमांय;
भावे हरि भक्ति करे, भावे बिषे कमाय ।

(४१५)

कोट करम पलमें करे, ए मन बिख्या स्वाद;
सत् गुरु शब्द माने नहि, जनम गमाया खाद ।

(४१६)

कबीर ! मन बिकारे पडा, गया स्वादके साथ;
गुटका खाया जबरका, अब क्युं आवे हाथ ?

(४१७)

पहेले राख न जानिया, अब क्युं आवे हाथ;
पड गया राता धुरा, बेपारीओ साथ ।

(४१८)

मन सब पर अस्वार हय, पेंडा करे अनन्त;
मनहि पर अस्वार रहे, को एक बिरला संत ।

(४१९)

कबीर ! मन मरतक भया, दुर्बळ भया शरीर;
पेन्डे लागा हरि फिरें, युं कहे दास कबीर ।

(४२०)

मन पानीकी प्रीतडी, पडा जो कपटी लोन;
खंड खंड हो गया, बहोर मिलावे कोन ?

(४२१)
कागड केरी नावडी और पानी केरा गंग;
कहे कबीर कैसे तिरुं, पांच कुसंगी संग ।

(४२२)
सांधे इंद्रीय प्रबलको,जेइसें उठे उपाध;
मन राजा बेहेकावतें, पांचो बडे असाध ।

(४२३)
काया देवळ मन धजा, बिषय लहेर फिराय,
मनके चलते तन चले, ताका सर्वस्व जाय ।

(४२४)
मन चले तो चलने दे, फिर फिर नाम लगाय;
मन चलतें तन थंभ हय, ताका कछु न जाय ।

(४२५)
मन गया ता जाने दे, मत जाने दे शरीर;
बिन चिल्ले चढि कमांन, किन बिध लागे तिर ?

(४२६)
मन मनता मन मार दे, राखो घटमें घोहेर;
जबहि चाले पुंठ दे, तो अंकुश दे दे फेर ।

(४२७)
या मन अटक्यो बावरो, राखो घटमें धहेर;
मन ममतामे गल चले, तो अंकुश दे दे फेर ।

(४२८)
मेरा मन मकरंद था, करता बहु बिगार;
अब सूंधा हो मारग चला, हरि आगे हम लार ।

(४२९)
मन मारी मेंदा करु, तनकी पाडुं खाल;
जीभ्याका टुकडा करुं, जो हरि बिन काढे स्वाल ।

(४३०)
मन दिया उने सब दिया, मनकि गेल शरीर;
तन मन दे उबरन भयें, हरिको दास कबीर ।

(४३१)
जो तन मांहि मन धरें, मन धर निर्मळ होय;
साहेब सों सनमुख रहें, तो फिर बाळक होय ।

(४३२)
तनकु मन मिलता नाहि, तो होता तनका भंग;
रहेता काला बोर ज्युं, चढे ना दुजा रंग ।

(४३३)
काम हय त्यां राम नहि, राम नहि त्यां काम;
दोनो एक जा क्युं रहे, काम राम एक ठाम ?

(४३४)
हिरदा भित्तर आरसी, मुख देखा न जाय;
मुख तो तबहि देखीयें, जब मनकी दुबधा जाय ।

(४३५)
चंचळ मनवा चेत रे, सुतो कयां अज्ञान;
जब धर जम ले जायेगा, पडा रहेगा म्यान ।

(४३६)
तनका वेरी को नहि, जो मन शितल होय;
तुं आपाको डाल दे, तो दया करे सब कोय ।

(४३७)
तन मन दिया तो भली करी, डारा शिरका भार;
कब कहे जो में दिया, दो बहोंत सहेगा मार ।

(४३८)
मन ठहेरा तब जानिये, अनसूज सबे सुजाय;
ज्युं अंधियारे भवनमें, दिपक बार दिखाय ।

(४३९)
कबीर ! मन परबोध ले, आपहि ले उपदेश;
जो अे पांचो वश करो, तो शिष्य होय सब देश ।

(४४०)
मन कपडा मेला भया,इनमें बहोत बिगार;
ये मन कैसे धोइयें, सन्तो करो बिचार ?

(४४१)

सत गुरु धोभि ज्ञान जल, साबु सरजन हार;
सुरत शिलापर धाइऐ, निकसें जोत अपार।

(४४२)

कबीर ! कायाकों झगो, साइ साबुन नाम;
रामहि राम पोकारतां धोया पांचो ठाम।

(४४३)

कबीर ! मन निश्चिल करो, गोविंदके गुण गाय;
निश्चल बिना न पाईये, कोटीक करो उपाय।

(४४४)

भक्त द्वार हय सांकडा, राई दसमा भाग;
मनहि जब रावत हो रहा, तो क्युं कर शके समाय ?

(४४५)

राइ बातां बिसवा, फिर बिसनका बिस;
अैसो मनवा जो करें, तहि मिले जगदिश।

(४४६)

मन गोरख मन गोविंदा, मनहु औघट होय;
जो मन राखे जतन कर, तो आपे करता सोय।

(४४७)

जब तक आश शरीरकी, निर्भय भया न जाय;
काया माया मन तजें, चौपट रहा बजाय।

(४४८)

मन राजा मन रंक हय, मन कायर मन सुर;
सुन्य शिखरपर मन रहे, मस्तक आवे नुर।

(४४९)

तेरी जोतमें मन धरें, मन घर होय पतंग;
आपा खोये हरि मिले, तुज मिल्या रहे रंग।

(४५०)

दोरी लागी भय गया, मत पाये विश्राम;
चित्त चोंटा हरि नामसों, मिट गया सबहि काम।

(४५१)

ये मन हरि चरणे चला, माया मोहसें छुट;
बे हद मांहि घर किया, काळ रहा शिर कुट।

(४५२)

ये मन थाकी थीर भया, पग बिन चले न पंथ;
एकज अक्षर अलेखका, थाके कोटी ग्रंथ।

(४५३)

मेरा मन सुमरे रामको, मनमे राम समाय;
मनहि जब राम हो रहा, तो शिश नमावुं काय ?

(४५४)

तुं तुं करता तुं भया, तुं मांहे रहे समाय;
तुं माहिं मन मिला रहा, अब मन अंत न जाय।

(४५५)

तुं तुं करता तुं भया, मुंजसे रहि न ''हुं'';
वारी फेरुं नाम पर, जीत देखु तित ''तुं''।

(४५६)

शब्द शब्द कहा करो, शब्द के हाथ न पांव;
एक शब्द ओखड करे, एक शब्द करे घाव।

(४५७)

एक शब्द सुख रास हय, एक शब्द दुःख रास;
एक शब्द बंधन कटे, एक शब्दे परे फांस।

(४५८)

एक शब्द सु प्यार हय, एक शब्द कु प्यार;
एक शब्दे सब दुश्मन, एक शब्दे सब यार।

(४५९)

शब्द ऐसा बोलिये, तनका आपा खोय;
औरनकों शितल करे, आपनको सुख होय।

(४६०)

शितल शब्द उच्चारीयें, अहम आनियें नांहि;
तेरा प्रीतम तुजमे बसें, दुशमन बी तुंज मांहि।

(४६१)

जे शब्दे दु:ख ना लगें, सोहि शब्द उच्चार;
तत् मिटी शितल भया, सोहि शब्द तत्सार।

(४६२)

शब्द सरिखा धन नहि, जो कोई जाने बोल;
हिरा तो दामे मिले, पर शब्द न आवे मोल।

(४६३)

कठन बचन बिखसे बुरा, जार करे सब छार;
संत बचन शितल सदा, बरखे अमृत धार।

(४६४)

कउवे किसका धन हरा, कोयल किसको देत ?
मिठा शब्द सुनायके, जग अपना कर लेत।

(४६५)

मिठा सबसे बोलीये, सुख उपजे कछु ओर,
ऐहि वशीकरण मंत्र हय, तजीये बचन कठोर।

(४६६)

गम समान भोजन नहि, जो कोइ गमको खाय;
अमरिख गम खाइया, दुरवासा विर लाय।

(४६७)

जीभ्या जीने वश करी, तिने वश किया जेहांन;
नहि तो अवगुण ऊपजे, कहे सब संत सुजाण।

(४६८)

शब्द शब्द बहु आंतरा, सार शब्द चित देय;
जो शब्दे हरि मिले, सोहि शब्द ग्रहि लेय।

(४६९)

शब्द बहोत हि सुन्या, पर मिटा न मनका मोह;
पारस तक पहोता नहि, तब लग लाहाका लोह।

(४७०)

शब्द हमारा सत् हय, तुम मत जाय सरक;
मोक्ष मुक्त फळ चाहो, तो शब्दको लेओ परख।

(४७१)

शब्द मारे मर गयें, शब्दे छोडा राज;
जीने शब्द विवेक किया, ताका सरिया काज।

(४७२)

शब्द शब्द सब कोइ कहे, वोह तो शब्द विदेह;
जीभ्यापर आवे नहि, निरख परख कर ले।

(४७३)

शब्द बिनां सुरता आंधळी, कहो कहां को जाय;
द्वार न आवे शब्दका, फिर फिर भटका खाय।

(४७४)

एक शब्द गुरु देवका, ताका अनन्त बिचार;
थाके मुनीजन पंडिता, भेद न पावे पार।

(४७५)

बेद थके ब्रह्मा थके, थकिया शंकर शेष;
गिताकोबी गम नहि, जहां सद्गुरुका ऊपदेश।

(४७६)

परखो द्वार शब्दका, जो गुरु कहें बिचार,
बिना शब्द कछु ना मिले, देखो नयन निहार।

(४७७)

होठ कंठ हाले नहि, जीभ्या न नाम ऊच्चार;
गुप्त शब्द जो खेले, कोई कोई हंस हमार।

(४७८)

लोहा चुंबक प्रीत हय, लोहा लेत उठाय,
ऐसा शब्द कबीरका, काळसें लेत छोडाय।

कार्य के बारे मे (४७९)

कहेता हय करता नहि, मुंहका बडा लबार;
काला मुंह ले जायगा, साहेबके दरबार।

(४८०)

कथनी कथी तो क्या भया, करणी नहि कराय ?
कालबुतका कोट जयुं, देखत हि देह जाय।

(४८१)

कहेना मिठी खांडसी, करना बिखकी लोय;
ज्युं कहेनी त्युं रहेनी रहे, तो बिखका अमृत होय।

(४८२)

जैसी बांनी मुख कहे, तैसी चाले नाहि;
मनुष्य नहि ए स्वान हय, बांधे जमपुर जाहि।

(४८३)

कथनी बकनी छोड दे, रहेनीसे चित्त लाय;
निरखी निर पीयें बिनां, कबहु प्यास न जाय।

(४८४)

कथते बकते पच गये, मूरख कोट हजार,
कथनी काची पड गई, रहेनी रहि सो सार।

(४८५)

जैसी बांनी मुख कहे, तैसी चाले चाल;
साहेब संग लागा रहे, तबहि होय नेहाल।

(४८६)

कथनी कथे सो पुत हमारा, बेद पढे सो नाती;
रहेणी रहे सो गुरु हमारा, हम हय ताकें साथी।

(४८७)

कुल करणी छुटे नहि, ज्ञानहि कथे अगाध;
कहे कबीर ता दासकों, मुख देखे अपराध।

(४८८)

रहेणी के मेदानमें, कथनी आवे जाय;
कथनी पिसे पिसनां, रहेणी अमल कमाय।

(४८९)

अेहरनकी चोरी करे, करे सुइ को दांन;
ऊंचा चढ कर देखते, कैतिक दूर विमांन ?

(४९०)

मनमांहिं फुला फिरे, करता हुं मय धरम;
कोट करम सिरपे धरे, ऐक न चिने ब्रह्म।

(४९१)

तिरथ चला नहांनेको, मन मेला चित चोर;
एकहु पाप न उतारा, लाया मन दस ओर।

(४९२)

नाह्ये धोये क्या भयो, मनको मेल न जाय;
मिन सदा जलमें रहे, धोवे कलंध न जाय।

(४९३)

जैसी करणी आपकी, तैसाहि फळ ले;
कुन्डे करम कमायके, सांइयां दोष न दे।

(४९४)

राम झरुखे बेठके, सबका मुजरा लेत;
जीनकि जैसी चाकरी, तिनको तैसा देत।

(४९५)

साहेबके दरबारमें, साचेको सिरपाव;
जुठा तमाचा खायगा, क्या रंक कया राव।

(४९६)

सांइयां के दरबारमे, कमी कछु हय नांहि;
बंदा मोज ना पावहि, तो चुक चाकरी मांहि।

(४९७)

साहेबके दरबारमे, क्युं कर पावे दाद;
पहेले काम बुरा करे, बाद करे फरियाद।

(४९८)

दाता नहि एक सम, सब कोइका देत;
हाथ कुंभ जीसका जैसा, तैसाहि भर लेत।

(४९९)

करताके तो गुण घणे, अवगुण एके नांहि;
जो दिल खोजुं आपनां, सब अवगुण मुज मांहि।

(५००)

जो तोको कांटा बुवे, तोको तुं बो फुल;
तोका फुलपे फुल हय, वाको कांटा सुल।

(५०१)

आपत भले ठगाइए, ओर न ठगिये कोय;
आप ठगाये सुख उपजे, पर ठगिया दुःख होय ।

(५०२)

कहेता हुं कहे जात हुं, देता हुं हेला;
गुरुकी करणी गुरु तिरें, ओर चेलाकी चेला ।

(५०३)

कबीर ! हम घर किया, गल कटांके पास;
करेगा सो पावेगा, तुं क्युं फिरे उदास ?

(५०४)

एक हमारी शिख सुन, जो तुं हुवा हय शेख;
करुं करुं तु क्या कहे, क्या कया किया हय देख ?

(५०५)

जब तुं आयो जगतमें, लोक हसे तुं रोय;
ऐसी करणी ना करो, के पिछे हसे कोय ।

(५०६)

जैसी कथनी में कथी, तैसी कथे न कोय;
करणीसें साहेब मिले, कथनी जुठी होय ।

(५०७)

ना कछु किया ना कर शका, न करने जोग शरीर;
जो कुछ किया सो हरि किया, ताते भयें कबीर ।

(५०८)

साच बराबर तप नहि, जुठ बराबर पाप;
जाके हदय साच हय, ताके हदय आप ।

(५०९)

ब्राह्मण गुरु जगतके, संतनके गुरु नाहि;
उलट पलट कर डुबया, चार बेदके मांहि ।

(५१०)

चार बेद पढवो करे, हरिसे नाहि हेत,
माल कबीरा ले गया, पंडित ढुंडे खेत ।

(५११)

पढि गुनी पाठक भयें, समजाया सब संसार;
आपन तो समजे नहि, वृथा गया अवतार ।

(५१२)

पढि गुनि ब्राह्मण भयें, किर्ती भइ संसार;
बस्तुकी समजन नहि, जयुं खर चंदन भार ।

(५१३)

पढत गुनत रोगी भयें, बडया बहोत अभिमान;
भित्तर ताप जगतकी, घडि न पडती शांन ।

(५१४)

पढें गुंने सब बेदको, समजे नहि गमार;
आशा लागी भरमकी, ज्युं करोलियाकी जार ।

(५१५)

पंडित पढते बेदको, पुस्तक हसति लाड;
भक्ति न जाणी रामकी, सबे परिक्षा बाद ।

(५१६)

पढते गुनते जनम गयो, आशा लागी हेत;
खोया बीज कुमतने, गयाज निर्फळ खेत ।

(५१७)

संसकृतहि पंडित कहे, बहोत करे अभिमान;
भाषा जानके तर्क करे, सो नर मुंढ अज्ञान ।

(५१८)

आतम् द्रष्ट जाने नहि, नाहवो प्रातःकाल;
लोक लाज लियो रहे, लागो भरम कपाल ।

(५१९)

तिरथ वृत सब करे, उंडे पानी नहाय;
राम नाम नहि जपे, काळ ग्रासे जाय ।

(५२०)

काशी कांठे घर करे, नहावे निर्मळ नीर;
मुक्त् नहि हरिनाम बिन, युं कहे दास कबीर ।

(५२१)

मछिंया तो कुलंधियां, बसें हय गंगा तीर;
धोवे कुलंध न जाय, राम न कहे शरीर ।

(५२२)

जप तप तिरथ सब करे, घडि न छांडे ध्यान;
कहे कबीर भक्ति बिना, कबू न होय कल्यांन ।

(५२३)

को ऐक ब्राह्मन मशकरा, वाको न दिजे दांन;
कुटुंब सहित नर्के चला, साथ लिये जजमान ।

(५२४)

कबीर ! पंडितकी कथा, जैसी चोरकी नाव;
सुन कर बेठे आंधळा, भावे तहां बिलमाव ।

(५२५)

काम क्रोध मद लोभकी, जलबग मनमें खान;
तबलग पंडित मुरखहि, कबीर एक समान ।

(५२६)

पढ पढ ओर समजावहि, न खोजे आप शरीर;
आपहि संशयमे पडा, युं कहे दास कबीर ।

(५२७)

चतुराइ पोपट पढि, पडा सो पिंजर मांहि;
फिर परमोधे ओरको, आपण समजे नाहि ।

(५२८)

हरिगुण गावे हरखके, हिंरदे कपट न जाय;
आपन तो समजे नहि, ओरहि ज्ञान सुनाय ।

(५२९)

चतुराई चुले पडो, ज्ञानको जमरा खाओ;
भाव भक्ति समजे नहि, जान पनो जल जाओ ।

(५३०)

लीखनां पढनां चातुरी, ऐ सब बातां सहेल;
काम दहन मन वशकरन, गगन चढन मुशकेल ।

(५३१)

ज्ञानी गाथा बहु मिले, कवि पंडित अनेक;
राम राता ओर इंद्रि जीता, कोटी मधे एक ।

(५३२)

तारा मंडळ बेठके, चंद्र बडाई खाय;
ऊदय भया जब सुर्यका, सब तारा छुप जाय ।

(५३३)

कुल मारग छोडा नहि, रहा मायामे मोह;
पारस तो परसा नहि, रहा लोहका लोह ।

(५३४)

पोथी पढ पढ जग मुवा, पंडित भया न कोय;
अढाई अक्षर प्रेमका, पढे सो पंडित होय ।

(५३५)

आत्म तत् जाने नहि, कोटी कथे ज्ञान;
तारे तिमर भागे नहि, जबलग उगे न भांन ।

(५३६)

में जानुं पढवो भलो, पढनेसे भलो योग;
राम नामसे दिल मिला, भलेही निंदे लोग ।

(५३७)

सज्जनका घऱ् ओर हय, औरोंका घर ओर;
समज्या पिछे जानिये, राम बसे सब ठोर ।

(५३८)

अजहु तेरा सब मिटे, जो गुरु मुख पावे भेद;
पंडित पास न बेठिये, बेठ न सुनिये बेद ।

(५३९)

कबीर ! ए संसारकु, समजावुं कंई बार;
पुछज पकडे भेंसको, उतरा चाहे पार ।

(५४०)

राश पराई राखतां, खाया घरका खेत;
ओरोंकुं परमोघतां, मुंहपे पडसी रेत ।

(५४१)

मन मथुरा दिल द्वारका, काया काशी जान;
दसमें द्वारे हय देहरा, तामे जोत पिछात ।

(५४२)

हरि हि सबको भजे, हरकों भजे न कोय,
जब लग आश शरीरकी, तब लगदास न होय ।

अज्ञानी के बारेमें (५४३)

उजड घरमें बेठके, किसका लिजे नाम ?
साकुंथके संग बेठके, कयुं कर पावे राम ?

(५४४)

साकुंथ साकुंथ कहा करो, फिट साकुथको नाम;
तेहिसे सुवर भलो, चोखो राखे गाम ।

(५४५)

हरिजनकी कुतियां भली, बुरी साकुंथकी माय;
वोह बेठी हरिगुन सुने, वां निंदा करत दिन जाय ।

(५४६)

हरिजनकी लातां भली, बुरी साकुथकी बात;
लातोमें सुख उपजे, बाते इज्जत जात ।

(५४७)

साकुंथ भलेहि सरज्या, पर निंदा करंत;
परको पार उतारके, आपहि नर्क परंत ।

(५४८)

जे रीती संतो तजे, मुंढ ताहि ललचाय;
नर खाय कर डारे, तो स्वांन स्वाद ले खाय ।

(५४९)

हरिजन आवत देखके, मोंहडो सुक गयो;
भाव भकित समज्यो नहि, मुरख चुक गयो ।

(५५०)

मखियां चंदन पर हरें, जहां रस मिले तहां जाय;
पापी सुने न हरि कथा, उंघे के उठ जाय ।

(५५१)

भक्त् भगवंत एक हय, बुजत नहि अज्ञान;
शिश न नावे संतको, बहोत करे अभिमान ।

(५५२)

पुर्व जनमके भागसे, मिले संतको जोग;
कहे कबीर समजे नहि, फिर फिर इच्छे भोग ।

(५५३)

जहां जैसी संगत करे, तहां तैसा फल खाय;
हरिमारग तो कठन हय, क्युं कर पेठा जाय ?

असल स्वभाव केबारे में (५५४)

ज्ञानीको ज्ञानी मिले, तब रसकी लुटा लूट;
ज्ञानीको अज्ञानी मिले, तो होय बडी माथाकूट ।

(५५५)

काजळ तजे न श्यामता, मुखटा तजे न स्वेत;
दुरिजन तजे ना कुठिलता, सज्जन तजे ना हेत ।

(५५६)

हरदी जरदी ना तजे, खटरस तजे न आम;
गुणीजन गुनको न तजे, अवगुण तजे न गुलाम ।

(५५७)

दुरिजनकी करुणा बुरी, भलो सज्जनको त्रास;
सुरज जब गरमी करे, तब बरसनकी आस ।

(५५८)

कछु कहा निंच न छेडीये, भलो न वाको संग;
पथ्थर डारे किचमें, ते उछली बिगाडे अंग ।

(५५९)

खुडिया तो धरति खमे, काट खमे वनराय;
कठंन बचन तो साधु खमे, दरिया नीर समाय ।

(५६०)

तरवर कदी न फळ भखे, नदी न संचे नीर;
परमारथ के कारने, संतो घसे शरीर ।

(५६१)

तरवर सरवर संतजन, चौथा बरसे मेह;
परमारथ के कारने, चारो धर्या देह ।

(५६२)

चंदा सुरज चलत न दिसे, बढत न दिसे बेल;
हरिजन हर भजता न दिसे, ए कुदरतका खेल ।

(५६३)

साध सती ओर सुरवा, ज्ञानी ओर गजदंत;
ए तो निनकसे बहोर हि, जो जुग अनंत ।

(५६४)

भगत् बीज पलटे नहि, जुग जाय अनंत;
जहां जाय तहां अवतरे, तोय संतका संत ।

(५६५)

दाघज लगा नीलका, सो मन साबु धोय;
कोट कल्प तक समजाइए, कउवा हंस न होय ।

(५६६)

कपटी कदी ना ओधरे, सो साधन को संग;
मुज पखाले गंगमें, ज्युं भींजे त्युं तंग ।

(५६७)

सज्जनसे सज्जन मिले, होवे दो दो बात;
गधासे गधा मिले, खावे दो दो लात ।

(५६८)

जो जाको गुन जानत, तो ताको गुन लेत;
कोयल आमली खात हय, काग लिंबोरी लेत ।

(५६९)

खांड पडी जो रेतमे, किडी हो कर खाय;
कुंजर कहाडी ना शके, जो कोटी करे उपाय ।

(५७०)

जामे जीतनी बुद्धि, तितना वोह कर बताय;
वाको बुरा न मानिये, बहोत कहांसे लाय ?

(५७१)

जल ज्युं प्यारी माछली, लोभी प्यारा दाम;
मात प्यारा बाळका, भकित प्यारी राम ।

(५७२)

चातुरको चिन्ता घनी, नहि मुरखको लाज;
सर अवसर जाने नहि, पेट भरेंसे काज ।

(५७३)

कंचनको कछु ना लागे, अग्नि न किडा खाय;
बुरा भला हो वैश्नवा, कदी न नर्के जाय ।

(५७४)

बहेता पानी निर्मला, बन्धा गन्धा होय;
साधु तो रमता भला, दाघ न लागे कोय ।

(५७५)

इश्क खुन्नस खांसी, ओर पिये मधपांन;
ए सब छुपाया न छुपे, प्रगट होय निदांन ।

(५७६)

प्रीत पुरानी न होत हय, जो उत्तमसे लग;
सो बरस जलमे रहे, पथ्थरा न छोडे अग ।

(५७७)

जैसा अन्नजळ खाइए, तैसाहि मन होय;
जैसा पानी पिजीए, तैसी बांनी होय ।

(५७८)

जैसा घट तैसा मता, घट घट ओर स्वभाव;
जा घट हार न जीत हय, ता घट ब्रह्मा समाव ।

(५७९)

सुनीये गुनकी बांता, अवगुण लिजीये नाय;
हंस क्षीरकु ग्रहत हय, नीर सो त्यागे जाय ।

(५८०)

कामी, क्रोधी, लालची, इनसे भकित न होय;
भक्ति करे कोई सुरवा, जो जात वरन कुल खोय ।